ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 180-182**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

भक्तिकाल के विकास में नाथ सहित्य का योगदान

डॉ0 रेखा पन्त
सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, महर्षि महेश योगी रामायण विश्वविद्यालय, आयोध्या (उ0प्र0) भारत

Received-13.02.2026, Revised-20.02.2026, Accepted-27.02.2026 E-mail: pant77girish@gmail.com m

सारांशः हिंदी साहित्य का इतिहास राजाओं की गाथाओं या युद्धों का विवरण मात्र ही नहीं है, अपितु यह लोक–मानस की चेतना के क्रमिक विकास की यात्रा भी है। साहित्य की इस यात्रा में भक्तिकाल (संवत् 1375–1700) को स्वर्ण युग की संज्ञा दी गई है किन्तु स्वर्ण युग की इस उज्ज्वल प्रभा के मूलाधार में उसके पूर्ववर्ती आंदोलनों की सुदृढ़ आधार शिला निहित है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी भव्य प्रासाद की भव्यता यह आभास कराती है कि उसके पहले वहाँ असाधारण गृह, कुटीर और नगर की प्रारंभिक बसावट अवश्य रही होगी। इस स्वर्ण युग के समाज की वैचारिक भूमि को उर्वर बनाने में नाथ साहित्य की भूमिका अत्यंत ही आधारभूत सिद्ध होती है।

सिद्धों की वाममार्गी साधना और बौद्ध धर्म के विकृत होते स्वरूप के बीच नाथ संप्रदाय की उत्पत्ति 9वीं–10वीं शताब्दी के लगभग गुरु मत्स्येंद्रनाथ और गुरु गोरखनाथ के माध्यम से मानी जाती है। इन संतों ने योग साधना और भक्ति को एक नया रूप प्रदान दिया। उन्होंने संस्कृत के साथ–साथ प्रचलित लोक भाषाओं में भी रचनाएँ कीं, जिससे सामान्य जन तक उनके विचार सहजता और सरलता से पहुँच सकें। नाथों ने योग मार्ग के माध्यम से व्यक्ति को आत्म–संयम चारित्रिक शुचिता और अंतः साधना का मार्ग प्रशस्त किया।

कुंजीभूत शब्द– भक्तिकाल के विकास, नाथ सहित्य का योगदान, लोक–मानस, चेतना, क्रमिक विकास, उज्ज्वल प्रभा, बसावट, सहजता।

भक्ति काल के विकास में नाथ साहित्य के योगदान को केवल धार्मिक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता है अपितु इसके भाषाई, सामाजिक और दार्शनिक प्रभाव अत्यंत ही दूरगामी रहे हैं। जहाँ एक ओर नाथों के द्वारा अलख–निरंजन की अवधारणा देकर निर्गुण भक्ति की नींव रखी गई, वहीं दूसरी ओर नाथ कवियों ने जन भाषाओं यथा–खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी और पहाड़ी आदि में भी रचनाएँ कीं जिससे भक्ति का संदेश गाँव–गाँव तक पहुँच गया। नाथों का प्रभाव मैदानी क्षेत्र के साथ–साथ हिमालयी क्षेत्र में भी पूर्ण रूप से था। पहाड़ी साहित्य में यह प्रभाव मौखिक और पांडुलिपियों दोनों रूपों में परिलक्षित होता है। वहां के लोक मानस में रचे बसे मसान, लकुड, जागर आदि शब्द नाथ साहित्य की ही देन है। नाथों की सधुक्कड़ी भाषा ने कबीर जैसे संत कवियों को जन–भाषा में अभिव्यक्ति का माध्यम प्रदान किया।

नाथ साहित्य में हठ योग और राज योग के माध्यम से आत्मानुभूति प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो ''भक्ति आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आई, उसने उत्तर भारत की उस जमीन पर अपना प्रभाव जमाया जो पहले से ही नाथों और सिद्धों द्वारा तैयार की जा चुकी थी।''

अतः नाथ साहित्य और भक्ति काल के संबंध को समझना हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक सातत्य को समझने के लिए अनिवार्य है। नाथ साहित्य आदिकाल और भक्तिकाल के संधि–स्थल का एक वैचारिक सेतु है।

आदिकाल का अंतिम चरण राजनैतिक अस्थिरता और धार्मिक द्वंद्व का काल था। एक ओर वीरगाथात्मक काव्यों में सामंती शौर्य का अतिशयोक्ति का पूर्ण वर्णन था, तो दूसरी ओर सिद्धों और जैन मुनियों की साधना अपने ह्रासोन्मुख दौर से गुजर रही थी। इसी संक्रमण काल में नाथ साहित्य ने एक वैचारिक सेतु का कार्य किया।

संवत 1300 के आस–पास जब वीरगाथा काल की तलवारों की खनक कम हो रही थी और विदेशी आक्रमणों के कारण समाज में एक प्रकार की कुंठा घर कर रही थी तब नाथों के हठयोग ने जन–मानस को अपने भीतर मुड़ने की प्रेरणा दी। यही वह संधि–स्थल था जहाँ सिद्धों की महासुखवाद वाली विकृत साधना से हटकर नाथों ने योग और संयम को प्रतिष्ठित किया। यही संयम आगे चलकर भक्ति काल की विशुद्ध नैतिकता का आधार बना। यद्यपि हिंदी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नाथों व सिद्धों के साहित्य को साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र कह कर हिंदी साहित्य से अलग रखा लेकिन अपने प्रवर्द्धित संस्करण में वह लिखते हैं "आदिकाल के भीतर सिद्धों और नाथों की परम्पराओं का कुछ विस्तार के साथ वर्णन यह दिखाने के लिये करना पड़ा कि कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण संत मत के प्रचार के लिये किस प्रकार उन्होंने पहले से रास्ता तैयार कर दिया था''।

आदिकालीन युद्धों की कोलाहल पूर्ण पृष्ठभूमि के बीच नाथों की शून्य साधना ने मानसिक शांति का मार्ग प्रशस्त किया। नाथों द्वारा दी गयी उर्वरक वैचारिक भूमि पर भक्ति काल का एक विराट वटवृक्ष खड़ा हुआ। योग, साधना रूपी गहरी जटाओं ने इसे एक सुदृढ़ आधार दिया तथा भक्ति, प्रेम, रूपी निर्मल सलिल ने इसे संचित किया जिसमें राम, कृष्ण, सूफी ,संत शाखाओं ने तुलसी, सूर, जायसी, कबीर जैसे कोकिल कंठों को आश्रय दिया जिनके कालजयी मधुर स्वर से सम्पूर्ण हिंदी साहित्य गुजायमान हो उठा। तत्कालीन मुस्लिम शासकों की बेड़ियों में जकड़े भारतीय समाज के लिये इस वटवृक्ष ने न केवल सुगन्धित प्राणवायु का संचार किया बल्कि रामचरितमानस जैसा अक्षय अमृत फल भी प्रदान किया जो अपनी सात्विक मिठास से आज भी प्रत्येक भारतीय घर को ऊर्जावान बना रहा है।

"अगर आदि कालीन सिद्धों और नाथ पंथियों के काव्य रूपों को हिंदी क्षेत्र से निकाल दिया जाये तो फिर भक्ति कालीन निर्गुण पंथियों की काव्य गंगा का उद्गम बताना कठिन हो जायेगा और जो लोग मैदान से ही गंगा को गंगा मानते हैं जिस पर्वत से वह निकली है उसे ऊबड़–खाबड़ भूमि समझकर छोड़ देना चाहते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि तब उनकी गंगा को जीवन कौन देगा''?

इस काल में भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त होकर लोक भाषा पुरानी हिंदी सधुक्कड़ी जनभाषा की ओर बढ़ रही थी। नाथों ने इसी संधि–काल में उस भाषा को गढ़ा जिसे आगे चलकर कबीर आदि संत कवियों ने अपना मुख्य अस्त्र बनाया तथा जायसी, तुलसी और सूर ने अवधी व ब्रजी के माध्यम से जन मानस के हृदय में प्रेम, भक्ति भावना, मानवी संवेदना का संचार किया

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संधि–स्थल को स्पष्ट करते हुए माना है कि नाथों की अंतः साधना ने ही उस समय के हिंदू समाज को बाहरी दबावों के बीच अपने अस्तित्व को बचाए रखने का आत्मबल दिया। यदि नाथ पंथ ने उस संक्रमण काल में ईश्वर के निराकार और सर्वव्यापी रूप को लोक–सुलभ न बनाया होता तो भक्ति काल की निर्गुण धारा का इतना तीव्र प्रस्फुटन संभव न होता।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

राम भक्ति परम्परा के स्वरूप को भी गढ़ने में नाथ पंथ की साधना, वैराग्य और आंतरिक अनुभूति की चेतना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आडंबर विहीन, सहज और जन सुलभ भक्ति का जो स्वर राम काव्य में प्रतिध्वनित होता है उसमें नाथ परम्परा की गूढ़ साधना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

नाथ पंथ का दार्शनिक आधार अत्यंत सुदृढ़ और व्यापक है, जिसमें शैव मत, बौद्धों की वैचारिक परंपरा और उपनिषदों के अद्वैतवाद का समन्वय मिलता है। नाथों का दर्शन मूलतः शिव पर केंद्रित है, "इस परम शिव को जब सृष्टि करने की इच्छा होती है तो इच्छा युक्त होने के कारण वे सगुण शिव कहा जाता है कि यह इच्छा ही शक्ति है अब इस अवस्था में परम शिव से एक ही साथ दो तत्व उत्पन्न हुए शिव और शक्ति''।

किंतु यहाँ शिव केवल एक पौराणिक देवता नहीं बल्कि परमतत्व या आदिनाथ हैं। इस दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता समरसतावाद है। ''नाथ पंथ में परम तत्व के रूप में शिव (योगी राज) को प्रतिष्ठित किया है हनुमान और शिव अभिन्न हैं अतः इस पंथ में हनुमान के प्रति आदर भाव होने के कारण उनकी (हनुमान) शिव के अवतार रूप में स्वीकृति हो सकती है''।

डॉ0 रांगेय राघव का मत है कि दिनोधर धर्मशाला पर नाथ पंथियों में हनुमान और रामचंद्र के चित्र स्वीकृत है टीला में वैष्णव मत की स्वीकृति है पुरी मैं गरुड़ की। हनुमान टीका लगाने में और रुद्राक्ष में दसमन को में विष्णु के 10 अवतार स्वीकृत हैं'' नाथों का मानना है कि संसार और मोक्ष या शिव और शक्ति के बीच कोई तात्विक भेद नहीं है। साधक जब योग के माध्यम से अपनी कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर उसे सहस्रार चक्र में स्थित शिव से मिला देता है तब वह द्वैत से मुक्त होकर अद्वैत की अवस्था प्राप्त कर लेता है। यही समरसता का भाव आगे चलकर भक्ति काल के कवियों की वैचारिक एकता का आधार बना। राम भक्ति शाखा इस समन्वय को और भी व्यापक बनाया राम साहित्य में मिलने वाले अनेक शब्द और प्रतीक सीधे नाथ पंथ से आए हैं, जैसेः अनहदनाद, गगनमंडल, कमल, सुरति–निरति, और कुंडली।

इस दर्शन का दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ पिण्ड–ब्रह्मांडवाद है। नाथ योगियों का यह दृढ़ विश्वास था कि संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्तियाँ और रहस्य मानव शरीर के भीतर ही सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं। ''यत्पिण्डेतत्ब्रह्माण्डे'' के सिद्धांत को मानते हुए उन्होंने बाहरी तीर्थों, मूर्तियों और कर्मकांडों का खंडन किया। उनके अनुसार यदि ईश्वर को प्राप्त करना है, तो शरीर रूपी घट के भीतर ही शोध करना होगा। इसी दार्शनिक दृष्टि ने भक्ति काल के निर्गुण संतों को घट–भीतर ईश्वर खोजने की प्रेरणा दी जिससे धर्म का लोकतंत्रीकरण हुआ और वह किसी मंदिर या मस्जिद का बंधक नहीं रहा।

नाथों की शून्य और निरंजन की अवधारणा उनके दर्शन को एक अद्वितीय ऊँचाई प्रदान करती है। नाथ साहित्य में जिस शून्य की चर्चा की गई है, वह बौद्धों के शून्य से भिन्न है। यह एक ऐसी भावात्मक स्थिति है जहाँ मन पूरी तरह स्थिर हो जाता है और साधक को अनहदनाद सुनाई देने लगता है। उन्होंने परमसत्ता को अलख निरंजन कहा, जो माया के अंजन से रहित है। यह दार्शनिक विचार भक्ति काल की ज्ञान मार्गी शाखा के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ जहाँ कबीर जैसे संतों ने इसी निरंजन को निराकार राम के रूप में स्वीकार किया।

अंततः, नाथों का दर्शन हठ योग के माध्यम से आत्म–परिष्कार का मार्ग है। 'ह' और 'ठ' अर्थात सूर्य और चंद्र रूपी प्राणों का मिलन ही वह दार्शनिक क्रिया है, जिससे साधक मृत्यु और जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है। नाथों ने यह प्रतिपादित किया कि बिना इंद्रिय निग्रह और मानसिक शुचिता के ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। उनका यह कठोर नैतिक अनुशासन और दार्शनिक चिंतन ही वह आधारशिला थी जिस पर भक्तिकाल के कवियों ने प्रेम और ज्ञान का भव्य महल खड़ा किया। इस प्रकार नाथ साहित्य का दर्शन केवल एकांत की साधना नहीं था बल्कि वह मिथ्याडंबरों के विरुद्ध एक बौद्धिक विद्रोह था।

भक्तिकालीन काव्य और संतों पर नाथ साहित्य के प्रभाव को समझने के लिए हमें कबीर और उनके समकालीन संतों की शब्दावली और विचारधारा का सूक्ष्म विश्लेषण करना होगा। नाथों ने जिस अंतः साधना का मार्ग प्रशस्त किया था, वही आगे चलकर निर्गुण संतकाव्य की मुख्य धारा बनी। कबीर के साहित्य में प्रयुक्त उलट बाँसियाँ सीधे तौर पर नाथों की शैली से प्रभावित हैं जहाँ भाषा के उलटफेर के माध्यम से आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट किया जाता है। जब कबीर गगन मँडल या अमृत रस की बात करते हैं तो वे वास्तव में नाथों की उसी योग–परंपरा को आगे बढ़ा रहे होते हैं जिसमें सहस्रार चक्र से टपकने वाले आनंद को सर्वोच्च उपलब्धि माना गया है।

सामाजिक धरातल पर नाथों का सबसे बड़ा प्रभाव उनके निर्भीक और विद्रोही स्वर में दिखाई देता है। नाथ योगियों ने जिस प्रकार जाति–पाँति के भेदभाव को नकारा और वर्ण–व्यवस्था की जड़ों पर प्रहार किया वही स्वर भक्ति काल के संतों में और अधिक प्रखर होकर उभरा।नाथों ने घोषणा की थी कि योग मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति किसी भी जाति का हो सकता है, और इसी वैचारिक स्वतंत्रता ने भक्ति काल के संतों को यह साहस दिया कि वे समाज के वंचित वर्गों को ईश्वर की भक्ति का समान अधिकारी बता सकें। कबीर की फटकार और उनकी अक्खड़ता के पीछे गोरखनाथ की वही वैराग्यपूर्ण कठोरता काम कर रही थी जिसने बाह्य आडंबरों को पूरी तरह से नकार दिया था।

इसके अतिरिक्त, गुरु की महत्ता का जो शिखर हमें भक्ति काल में दिखाई देता है, उसकी नींव नाथ साहित्य में ही रखी गई थी। नाथों के लिए गुरु केवल शिक्षक नहीं, बल्कि वह शक्ति है जो शिष्य के भीतर सोई हुई कुंडलिनी को जागृतकर उसे परमात्मा से मिला सकती है। भक्ति काल के संतों ने इसी गुरु–तत्त्व को आत्म सात किया और ''गुरु गोविंद दोऊ खड़े'' जैसे पदों के माध्यम से गुरु कोई श्वर से भी ऊपर का स्थान दिया। नाथों की साधना पद्धति में जो शून्य की स्थिति थी, उसे संतों ने सहज समाधि का नाम दिया, जिससे योग की कठिन प्रक्रिया जन सामान्य के लिए प्रेम और सुमिरन के माध्यम से सरल हो गई।

अंततः नाथ साहित्य ने भक्ति काल को एक ऐसी पारिभाषिक शब्दावली दी जिसके बिना संत साहित्य की व्याख्या असंभव है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अनहदनाद, और कमल दल जैसे प्रतीकों का प्रयोग कर संतों ने सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभवों को अभिव्यक्ति दी। जायसी जैसे सूफी कवियों पर भी नाथों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहाँ पद्मावत में चित्तौड़ से सिंघल द्वीप की यात्रा वास्तव में शरीर के भीतर के चक्रों को भेदने की एक आध्यात्मिक यात्रा का रूपक बन जाती है। "जायसी के पद्मावत में बालनाथ का टीला आया है''

गोखर की योग–प्रभुता को जायसी ने स्वीकार किया है, ''जोगी सिद्ध होय तब, जब गोरख सों भेंट'' (पदमावत) तो तुलसी ने भी व्याजस्तुति में गोरख के 'योग' को 'भक्ति' से सबल और प्रभावी माना है, ''गोरख जगायो जोग में भगति भगायो लोग''। ''कबीर ने तो मानो गोरख के सम्पूर्ण न चिन्तन–दर्शन और काव्यरचना–विन्यास को सांगोपांग ग्रहण कर लिया था। प्रसंगवश यह कहना

तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि हैं योग और नाथयोग के व्याज से सम्पूर्ण उत्तरभारत की भक्तियात्रा (भक्ति–आन्दोलन) के आदिनायक महायोगी कवि गुरु गोरखनाथ ही रहे हैं। हिन्दी की आदिकालीन और मध्यकालीन योगभाषा–भक्तिभाषा के प्रणेता–पुरोधा भी''।

इस प्रकार नाथ साहित्य ने भक्तिकाल के लिए वह मजबूत वैचारिक और भाषिक पृष्ठभूमि तैयार की जिस पर मध्य कालीन भक्ति आंदोलन का विशाल प्रासाद निर्मित हुआ। नाथ साहित्य और भक्तिकाल की भाषाई एकता वह कड़ी है जो प्रमाणित करती है कि संतों ने केवल विचार ही नहीं बल्कि अभिव्यक्ति का माध्यम भी नाथों से विरासत में पाया था।

नाथ साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण योगदान उसकी भाषा शैली है जिसने हिंदी की सधुक्कड़ी भाषा का आधार निर्मित किया। आदिकाल में जहाँ एक ओर राजदरबारों में डिंगल–पिंगल जैसी अलंकृत और सामंती भाषाओं का प्रयोग हो रहा था वहीं नाथों ने जनसामान्य की भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्होंने अपनी बानियों में खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी और ब्रज भाषा के मेल से एक ऐसी खिचड़ी भाषा तैयार की, जो उत्तर भारत के एक बड़े भू–भाग में समझी जा सकती थी। "उन्होंने (गोरखनाथ) लोक भाषा को भी अपने उपदेश का माध्यम बनाया जितने भी उपलब्ध सामग्री से निर्णय करना कठिन है कि उनके नाम पर चलने वाली लोक भाषा की पुस्तकों में कौन सी प्रमाणिक है और उनकी भाषा का विशुद्ध रूप क्या है तथा इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने अपने उपदेश भोजपुरी में भी प्रचारित किये"

यही कारण है कि जब भक्ति काल में कबीर, नानक और दादू जैसे संत आए, तो उन्हें जनता से जुड़ने के लिए किसी नई भाषा को गढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनके पास नाथों द्वारा तैयार की गई एक सशक्त लोक भाषा पहले से मौजूद थी।

शैली के धरातल पर नाथों की उलट बाँसियाँ और प्रतीकात्मकता भक्ति काल की एक विशिष्ट पहचान बनी। नाथ योगी अपनी बात को सीधे–सीधे कहने के बजाय रहस्यात्मक प्रतीकों में कहते थे ताकि जिज्ञासु साधक ही उसके मर्म को समझ सके। उदाहरण के लिए, शरीर को घर या नगर कहना, इंद्रियों को पशु कहना और मन को राजा कहना, ये सभी प्रयोग नाथों ने शुरू किए थे जिन्हें बाद में संतों ने अत्यंत कुशलता से अपनाया। नाथों की साखी और सबदी परंपरा ही आगे चलकर कबीर की साखियों और पदों के रू‍प में विकसित हुई। इस भाषाई निरंतरता ने ही भक्तिकाल के साहित्य को पुस्तकीय ज्ञान के बोझ से मुक्त कर उसे अनुभव की वाणी बनाया।

निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भक्ति काल के उदय और विकास में नाथ साहित्य की भूमिका एक बीज के समान है, जिससे कालांतर में भक्तिका विशाल वट वृक्ष विकसित हुआ। यदि नाथों ने हठयोग के माध्यम से इंद्रिय निग्रह और मानसिक शुचिता पर बलन दिया होता तो भक्ति काल की निर्गुणधारा को वह नैतिक शक्ति प्राप्त नहीं होती, जिससे उसने तत्कालीन समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया। नाथों ने ईश्वर को मंदिर–मस्जिद की कैद से निकाल कर मनुष्य के हृदय (घट) के भीतर प्रतिष्ठित किया जो भक्ति आंदोलन का मूल मंत्र बना।

यद्यपि नाथ पंथ में साधना की कठोरता और नारी के प्रति उपेक्षा जैसे कुछ सीमित दृष्टिकोण थे जिन्हें बाद में संतों ने प्रेम और सहजता जोड़कर परिष्कृत किया फिर भी भक्तिकाल के कवियों का वैचारिक ढांचा और भाषाई शिल्प पूरी तरह नाथों का ऋणी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन सटीक प्रतीत होता है कि भक्ति आंदोलन के लिए जो उर्वर भूमि तैयार की गई थी वह नाथों और सिद्धोंकीही देनथी। अंततः नाथ साहित्य ने मध्यकालीन भारत को वह आत्म बल प्रदान किया, जिसने समाज को बाहरी संकटों के बीच अपने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव को सुरक्षित रखने में सहायता की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण के सम्बन्ध में दो शब्द।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, सह–संपादक, डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ 76.
4. नाथ पंथ, हजारी प्रसाद दिवेदी, पृष्ठ 107.
5. पंचकृत वेदांत, पेज 301.
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 13.
7. जायसी पद्मावत, (पार्वती–महेश खण्ड), दोहा–6.
8. तुलसी, कवितावली (कलि–वर्णन प्रसंग), कविता–84.
9. चेतनता, जरनल– सितम्बर, 2020 से अगस्त, 2021, प्रो0 रामदरश राय, पृष्ठ 117.
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय, पृष्ठ 98.

*****